सत्यमेव जयते का प्रतीक मुहर्रम

जनाब मुहम्मद हसन "शाहिद नक़वी" साहब

त्याग और बलिदान का पर्व मोहर्रम सत्यमेव जयते का प्रतीक है। मोहर्रम किसी देश अथवा जाति विशेष का त्योहार नहीं-यह एक महान मानवीय पर्व है जो प्रत्येक वर्ष विश्व के कोने-कोने में मनाया जाता है।

अरब की तत्कालीन बर्बर जातियों तथा सम्पूर्ण मानव समाज को सत्य, अहिंसा, समानता और न्याय से परिचित कराने के लिए पैग़म्बर हज़रत मोहम्मद साहिब ने इस्लाम धर्म की स्थापना की थी, वास्तव में इस्लाम एक आन्दोलन था-जो समानता, न्याय और सत्य के पक्ष को मज़बूत करने के लिए तथा स्वार्थी मानव समाज में मानव अधिकारों की स्थापना करने के लिए चलाया गया था।

परन्तु न्याय और समानता पर आधारित इस्लाम उन लोगों को रास न आया जो इसके पूर्व धन, सम्पत्ति अथवा कुल के आधार पर अपनी-अपनी ख़ुदाई बनाए बैठे थे। अतः उन्होंने इस्लाम का कड़ा विरोध किया-परन्तु हज़रत मोहम्मद साहेब के तपोबल के आगे उन्हें घुटने टेकने पड़े-अतः उन्होंने दूसरी चाल चली-इस्लाम धर्म में ही प्रविष्ट होकर उसके विरूद्ध षडयंन्त्र करते रहने का फ़ैसला किया गया-ताकि उसकी जड़े कमज़ोर होती रहें, इस्लाम विरोधी इन्हीं शक्तियों के कारण 'बद्र' 'ओहद', 'अहज़ाब', 'हुनैन', 'खैबर', और 'तबूक' आदि लड़ाईयाँ हुईं-और यही वह शक्तियाँ थी-जिन्होंने लोगों के दिलों में "इस्लाम बज़ोरे शमशीर फैलाने" की भावना को जन्म देकर इस्लाम की पाक तस्वीर पर धूल जमाँ दी-वरना इस्लाम की दुनिया तो तलवारों की झंकार नहीं-दिलों की धड़कनों से गूंजती है-यहाँ जिस्मो व जान के नहीं-दौलत व हूकूमत के नहीं-दिलों के सौदे हैं-इस्लाम वह मेयार है जहाँ इन्सान की परख होती है।

मोहम्मद साहेब की मृत्यु के पश्चात् इन शक्तियों ने इस्लाम पर अपना पूर्ण अधिपत्य स्थापित कर लिया-और उसे एक तानाशाही साम्राज्य में बदलने की विशाल योजना बना डाली-इसे अमल में लाने के लिए फ़ासिस्ट तरीक़े इस्तेमाल किये जाने लगे। भय और आतंक के सहारे देखते-देखते इस्लाम के मुकाबले एक शक्ति शाली साम्राज्य उठ खड़ा हुआ-यज़ीद इस साम्राज्य का केन्द्र बिन्दु बना-इस साम्राज्य का उद्देश्य दुनिया में आंतक फैला कर यज़ीदी पूर्वजों की उस खुदाई को वापस लाना था, जिसे समाप्त करके इस्लाम ने मानवीय समानता की स्थापना की थी।

यज़ीद अत्याचार-अन्याय-असमानता और उत्पीड़न का प्रतीक था, वास्तव में यज़ीद उन्ही बुराईयों का समूह था जिन्हें समाप्त करने के लिए इस्लाम अस्तित्व में आया था। अतः जब यज़ीद ने हज़रत मोहम्मद साहेब के तत्कालीन उत्तराधिकारी हज़रत इमाम हुसैन से अपनी अधीनता स्वीकार करने को कहा तो हज़रत इमाम हुसैन ने साफ इनकार कर दिया।

दर अस्ल यज़ीद और हज़रत इमाम हुसैन दो विरोधी सिद्धान्त थे-यदि करबला के मैदान में ये दोनों सिद्धान्त मिल जाते तो हक और बातिल में-अर्थात सत्य और असत्य में कोई अन्तर न रह जाता, यज़ीद और हज़रत इमाम हुसैन के बीच की लड़ाई हक व बातिल के दरमियान एक अज़ीम जंग थी।

हज़रत इमाम हुसैन का यज़ीद की अधीनता न स्वीकार करने का मतलब साफ था-दुनिया को बताना कि "इन्सान हारने के लिए नहीं आया" आदमी को इस बात का एहसास दिलाना कि "मजबूरी, बेसरो सामानी और तनहाई इन्सान को तोड़ नहीं सकती-वह इन सब से बड़ा है- अकेला इनसान सारी दुनिया का मुक़ाबला कर सकता है।"

और यज़ीद के रूप में सारी मानव विरोधी शक्तियाँ सिमट कर आ गयी थी कि "देखें ! तौले ! इन्सान कितना वज़नदार है-आखिर आज़माकर तो देखें-वक्त और आदमी में कौन ज़्यादा ताक़तवर है ? यह एक खुला चैलेंज था-एक दस्तावेज़ी एलाने जंग था- इनसान और उसकी इनसानियत के खिलाफ़-

-और मानवता के गौरव हज़रत हुसैन ने चुनौती स्वीकार कर ली-और कहा "देखना ! ज़ुल्म की गर्दन यूँ मरोड़ूंगा कि दुनिया हैरत करेगी,"

-और इधर हज़रत इमाम हुसैन ने लोगों को समझाया-"देखो ! हमारी तरफ़ सोच समझ कर आना-हम

लूटने नहीं लुटने जा रहे हैं-

यज़ीदी साम्राज्य ने सेनाएँ जमा कीं-आतंक फैलाया -खज़ानों के मुंह खोले-दबदबा बना लिया।

हम किसी को क़त्ल करने नहीं जा रहे हैं-लेकिन हम सच हैं-अगर तुम्हें सच्चाई से प्यार है तो हमारी तरफ आओ ! हम इनसान हैं अगर तुम भी इनसान हो तो हमारा साथ दो।''

-और जब पर्दा उठा तो इतिहास की आँखें फटी की फटी रह गयीं-एक तरफ़ हथियारों से लैस-लूटने मारने पर तैयार लाखों की तादाद में यज़ीदी फ़ौजें थीं-तो दूसरी तरफ़ हज़रत इमाम हुसैन का एक छोटा सा निहत्था गिरोह-सिर्फ़ बहत्तर आदमी-जिनमें मर्द भी, औरतें भी, बूढ़े भी, जवान भी यहां तक की **6** माह का दूध पीता बच्चा अली असग़र भी तादाद में शामिल-सबका अज़्म एक-''बड़ी से बड़ी मुसीबतें सहेंगे-जानें दे देंगे-हक़ व इनसाफ़ के रास्ते से हटेंगे नहीं-मानव विरोधी ताक़तों के आगे झुकेंगे नहीं।''

जंग हुई तारीख के पन्ने एक ऐसी अनोखी जंग के गवाह बने जिसने हक़ व बातिल का फैसला कर दिया।

-नैज़ों पर कटे हुए सर-मैदान में कुचली हुई लाशें, जले हुए-लूटे हुए खेमे-सहमी हुई औरतें, डरे हुए बच्चे जंग के बाद हुसैनी गिरोह का यही ज़ाहिरी निशान बचा था लेकिन करबला की इस अनोखी जंग के बाद फ़िज़ा में हक़ व इनसाफ़ की हिमायत में एक ऐसी ताक़तवर आवाज़ गूंजने लगी-जिसे अब कोई ताकत खामोश नहीं कर सकती-कोई तारीख अनसुनी नहीं कर सकती।

हज़रत इमाम हुसैन और उनके हिमायती क़त्ल हो गये-लेकिन इनसानियत को हयाते जावेद दे गए इनके ख़ेमे जल गए लेकिन भयानक अंधेरे में रोशनी का सामान कर गए-उनके बच्चे भूखे प्यासे शहीद हो गए-लेकिन भूख और प्यास से तड़पते हुए इनसानों के लिए ढारस बन गये- हज़रत इमाम हुसैन ने दुनिया की कमज़ोर क़ौमों को फ़ासिज्म का मुकाबला करने का एक नया रास्ता दिखाया ग़रीबों और बेसहारों को एक नयी ताक़त दी और बताया कि ''इज़्ज़त की मौत ज़िल्लत की ज़िन्दगी से बेहतर है।'' हज़रत इमाम हुसैन करबला के ऐतिहासिक मैदान में मानव अधिकारों के लिए लड़े थे- उनकी क़ुरबानी सिर्फ़ इस्लाम के लिए नहीं सारे मानव समाज के लिए थी।

करबला का यह ऐतिहासिक बलिदान हिजरी सन् **61** के मोहर्रम नामक महीने में हुआ था-अतः प्रत्येक वर्ष मोहर्रम के महीने में हुसैनी परचम अलम और हज़रत इमाम हुसैन की समाधि के प्रतीक 'ताज़ियों' के जुलूस निकाल कर तथा मजलिसों का आयोजन करके-उसमें हज़रत इमाम हुसैन के महान बलिदान के महत्व पर साहित्य पढ़कर-उस अज़ीम क़ुर्बानी की याद ताज़ा की जाती है-जो टूटें हुए दिलों के लिए एक ढारस-कमज़ोर क़ौमों के लिए एक अजीब ब ग़रीब ताक़त और बेजुर्म व बेखता कुचले जा रहे इनसानों के लिए इत्तेहाद और हौसले का पैग़ाम है।

मोहर्रम के जुलूसों में बलन्द होने वाली 'या हुसैन ! या हुसैन ! '' की आवाज़-हर जगह और हर दौर के अत्याचार-अन्याय असमानता और उत्पीड़न के ख़िलाफ एक ताकत-वर आवाज़ है-मोहर्रम बिना रंग व नस्ल मज़हब व मिल्लत के भेद भाव के दुनिया के हर समय के-हर मुल्क के उन तमाम इनसानों के हक़ में आवाज़ बलन्द करता है-जो अभी तक दौलत के अम्बार के नीचे पिस रहे हैं-जो अभी तक इनसान विरोधी ताक़तों के शिकंजे में जकड़े हुए हैं-और जो अभी तक इनसानी हुक़ूक़ से महरूम है।

मोहर्रम उन ताक़तों के खिलाफ जनमत तैयार करता है जो दौलत, हुकूमत या अन्य किसी ताक़त का सहारा लेकर गरीबों, बेसहारों, कमज़ोरों और मजबूरों को दबाती हैं तथा उनके इनसानी हुकूक के साथ खिलवाड़ करती है।

ज़माना करवटें लेता रहा-हुकूमतें बनती बिगड़ती रहीं-यज़ीद अब तक ना जाने कितने नक़ाब-ना जाने कितने चेहरे ओढ़ चुका-लेकिन हुसैनियत आज भी वही है-जो आज से चौदह सौ साल पहले थी-और हमेशा वही रहेगी-क्योंकि हुसैन नाम है-इनसानियत का हुसैन नाम है आदमी की अदमीयत का और डा० इक़बाल के शब्दों में-हुसैन नाम है उस हक़ीक़त का जो

''हक़ीक़त-ए-अबदी है मक़ामे-ए-शब्बीरी,
बदलते रहते हैं अन्दाज़-ए-कूफ़ी व शामी''